प्रेम वाहिनी

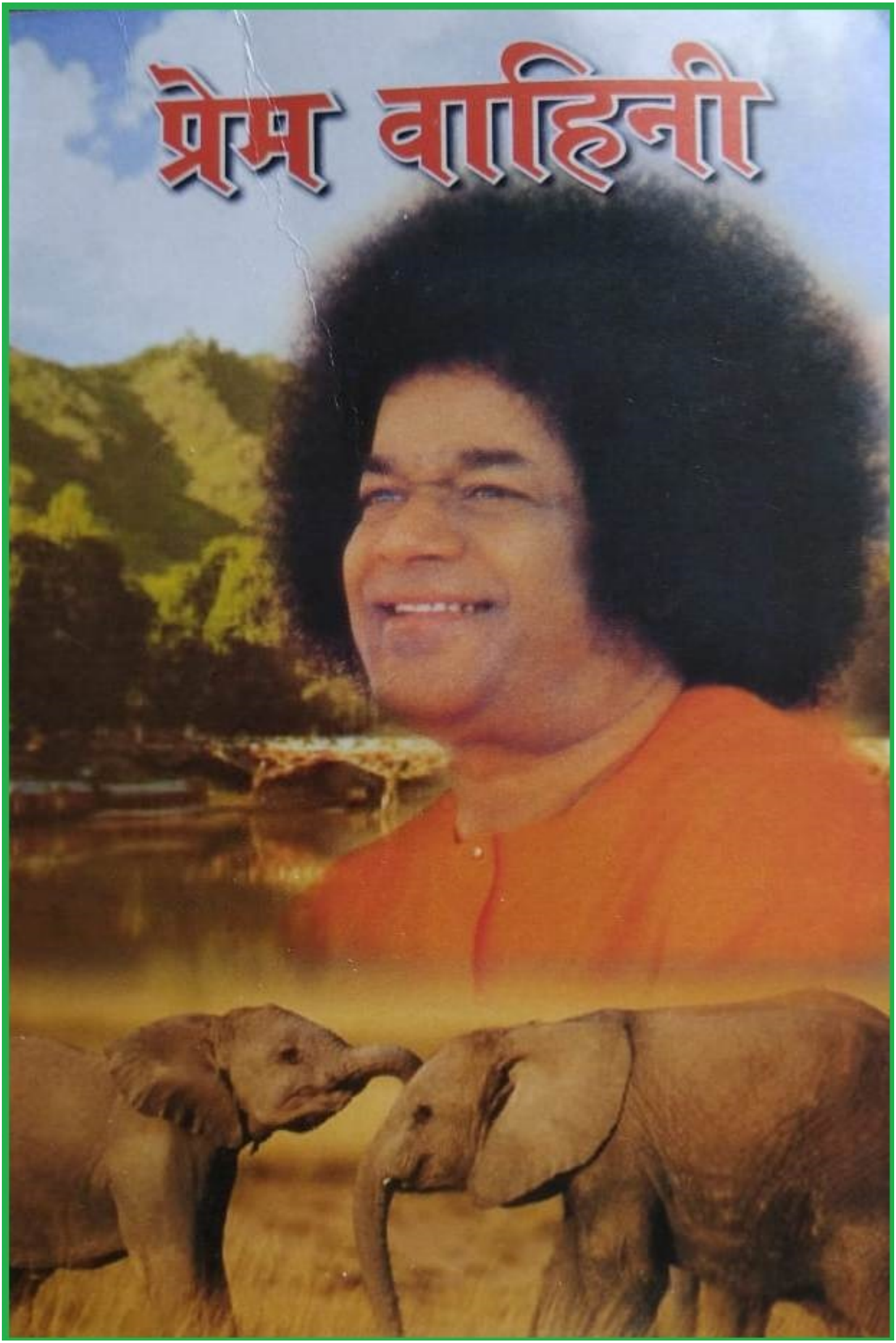

१४

भौतिक सृष्टि ही वास्तविक नहीं है

वास्तव में लोग परछाई देखते हैं और उसे ही सारपूर्ण समझ लेते हैं। वे लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई अथवा ऊँचाई देखकर परिणाम निकालते हैं कि उनके समक्ष कोई पदार्थ है। वे अनेक संवेदन और स्मृतियों की श्रृंखला का अनुभव करते हैं और उन सब की सामूहिक प्रतिक्रिया यह होती है कि वे इनके उत्पादक पदार्थ का अस्तित्व स्वीकार कर लेते हैं। बाह्य आकृति को भूल से वास्तविकता मान लेना तो ज्ञान का आभास मात्र है; पर वास्तविक ज्ञान क्यों कर हो सकता है? क्या व्यक्ति का चित्र कभी 'वह' हो सकता है? यदि परछाई को वह मान लें तो क्या इसे हम ज्ञान कह सकते हैं? आज सभी ज्ञान की यही प्रकृति होती है, जो कुछ पदार्थ रूप में प्रतीत होता है, वह रंचमात्र भी वास्तविक नहीं होता है, उसकी वास्तविकता तो ज्ञेय नहीं होती है।

अद्वैत्वादी 'अहं ब्रह्मास्मि' में विश्वास करता है। उसे यह विश्वास कैसे और [illegible] प्राप्त हुआ है? वह ऐसा कहता ही क्यों है? उससे पूछो तो यह उत्तर मिलेगा; ''श्रुति ऐसा ही कहती हैं, गुरु ने यही शिक्षा दी है।'' परन्तु इन स्रोतों से यह जान लेने मात्र से उसे इतनी गंभीर घोषणा का अधिकार नही मिल जाता है। यदि एक व्यक्ति को अहम्, ब्रह्म और अस्मि इन तीनों शब्दों का पूर्ण ज्ञान हो तो क्या उसे ब्रह्म् से एकत्व प्राप्त हो जाता है? नहीं, अगणित जन्मों तक निरन्तर प्रयास से शास्त्रीय कर्त्तव्यों का सच्चाई से पालन द्वारा कही मन स्वच्छ और पवित्र हो पाता है। ऐसे मन में भक्ति का बीज अंकुरित होता है, जब इसकी सावधानी और ज्ञान से देखभाल की जाती है तब पुष्प खिलते हैं, फल उगते हैं और वे सुगन्ध और मिठास के साथ पकते हैं। जब फल को खाया जाता है तब जीव का ब्रह्म् से एकाकार हो पाता है उस ब्रह्म् से जो सर्वव्यापक, शाश्वत और सच्चिदानन्द स्वरूप है।

व्यक्ति 'अहं ब्रह्मास्मि' मन्त्र का शुद्ध उच्चारण करना सीख ले, उसकी व्युत्पत्ति भी शुद्ध होवे, परन्तु जब वह 'संसार' से अपरिचित है, 'मैं' से अपरिचित है और ब्रह्म के विषय में पूर्णरूप से अज्ञानी होवे तो फिर वह ज्ञानी होने का महादुर्लभ आनन्द कैसे चख सकता है? शब्दों का पूर्ण ज्ञान और उनकी व्याख्या का महत्व नहीं होती है; यह तो चेतना और अनुभव इन दोनों ही का मौलिक महत्व होती है।

एकमात्र मिट्टी ही वास्तविकता है। पात्र होने की चेतना तो मिट्टी के सम्बन्ध में अज्ञान होने से ही उत्पन्न होती है; मिट्टी मूलाधार है, वही पात्र का पदार्थ है। मिट्टी के बिना पात्र का अस्तित्व ही नहीं है। कारण के बिना कार्य कैसे रह सकता है? केवल अज्ञानी को ही सृष्टि विविधतायुक्त प्रतीत होती है। ज्ञानी को एकमात्र ब्रह्म, जिस पर सभी कुछ बाह्य रूप में अध्यारोपित किया गया है, प्रतीत होता है। उसके द्वारा केवल आत्मा का अस्तित्व ही स्वीकृत किया जाता है और कुछ नहीं होता है। अद्वैतवादी को यही अनुभव होता है।

यदि यह संसार वास्तविक है, तो सुषुप्ति में भी इसकी अनुभूति रहनी चाहिए परन्तु जब हमें रंचमात्र भी इसकी चेतना नहीं रहती है। इसलिए यह दृश्यमान् जगत उतना ही अवास्तविक है जितना कि स्वप्न-लोक। भ्रम से जैसी रस्सी में सर्प की प्रतीति होती है, यह संसार भी ब्रह्म की वास्तविकता सा प्रतीत होता है। एक ही क्षण में रस्सी और सर्प दोनों की अनुभूति नहीं होती है, समूची रस्सी ही सर्प प्रतीत होती है। इसी प्रकार, यह संपूर्ण विश्व ब्रह्म है, यह सब नाम रूप की विविधता है। परन्तु कल्पना जन्म यह विविधता मूलतः असत्य है। केवल ब्रह्म ही सत्य है।

एक ताड़ी के घट में प्रतिबिम्बित आकाश ताड़ी से अलिप्त रहता है, दूषित नहीं होता है। इसी प्रकार इस शरीररूपी वाहन में आत्मा पवित्र और शुद्ध रूप में निवास करती है। कर्मों के शुभाशुभ, सुन्दर और घृणित फल केवल शरीर ही भोगता है न कि अन्तर्वासी साक्षी आत्मा।

जब ऐसा ज्ञान उदय हो जाता है तो तीनों प्रकार के कर्मों, संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण, की अंधेरी परछाई उस दिव्य आलोक में विनष्ट हो जाती

है। प्रारब्ध कर्म भी नष्ट हो जाता है। क्योंकि दैवेच्छा सर्वशक्तिमान् होती है और सर्वशक्तिमान् की कोई सीमा नहीं होती है और न उसका कोई अपवाद होता है। जब साधना द्वारा तुम भगवत्संकल्प जीत लेते हो; तो उस संकल्प द्वारा प्रारब्ध पर भी विजय पा सकते हो। इसमें निराशा के लिए कोई भी वैध कारण नहीं होता है।

इस संसार के कष्ट और यातनायें अस्थायी और भ्रामक हैं। इस महान् तथ्य पर दृढ़ता से अपना ध्यान केन्द्रित रखते हुए साहसपूर्वक साधना के मार्ग पर चल पड़ो; यह साधना भक्ति की होवे।